बंगाल का काल

बंगाल का काल

सन् १९४३ में रचित

Bengal ká kál

Poetry

कल सुधारूँगा हुई संसार में जो भूल,
कल उठाऊँगा भुजा अन्याय के प्रतिकूल ।

—सतरंगिनी

बच्चन की अन्य प्रकाशित रचनाएँ

१—सूत की माला
२—खादी के फूल
३—मिलन यामिनी
४—हलाहल
५—सतरंगिनी
६—आकुल अंतर
७—एकांत संगीत
८—निशा निमंत्रण
९—मधुकलश
१०—मधुबाला
११—मधुशाला
१२—खैयाम की मधुशाला
१३—प्रारंभिक रचनाएँ—पहला भाग } कविताएँ
१४—प्रारंभिक रचनाएँ—दूसरा भाग }
१५—प्रारंभिक रचनाएँ—तीसरा भाग—कहानियाँ
१६—बच्चन के साथ क्षण भर

इनके विषय में विशेष जानकारी के लिए प्रकाशक से बच्चन-रचनावली की विवरण पत्रिका मँगाएँ।

Bangal-Ka-Kal

बंगाल का काल

बच्चन

Bachchan.

कोकिले, पर यह तेरा राग
हमारे नग्न-बुभुक्षित देश
के लिए लाया क्या संदेश ?
साथ प्रकृति के बदलेगा इस दीन देश का भाग ?

—प्रारंभिक रचनाएँ
(पहला भाग)

Price 1/4/-

pp. 65

प्रकाशक
सेन्ट्रल बुक डिपो
इलाहाबाद

इस पुस्तक का पहला संस्करण भारती भंडार, प्रयाग से प्रकाशित हुआ था।

पहला संस्करण—मार्च, १९४६
दूसरा संस्करण—जनवरी, १९५०

मुद्रक
कृष्ण प्रसाद दर
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

विज्ञापन

बच्चन के प्रेमियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमने उनकी समस्त रचनाओं को प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर ले लिया है।

हमारा प्रयत्न होगा कि हम उनकी नई पुरानी सभी पुस्तकों को सुरुचिपूर्ण आकार-प्रकार देकर आपके सामने उपस्थित करें।

'बंगाल का काल' का दूसरा संस्करण आपके आगे है। हमें आशा है आपको पसंद आएगा। शीघ्र ही उनकी अन्य अप्राप्य रचनाएँ भी नवीन संस्करणों में हम आपके सामने रख सकेंगे, कुछ नवीन रचनाएँ भी।

हम आपके सहयोग के प्रार्थी हैं।

—प्रकाशक

समर्पण

अब
उन आधे करोड़ आदमियों की यादगार में
जो बंगाल-काल की क्षुधा-ज्वाल
में स्वाहा हो गए !

बंगाल का काल

पड़ गया बंगाले में काल,
भरी कंगालों से धरती,
भरी कंकालों से धरती !

दीनता ले असंख्य अवतार,
पेट खला,
हाथ पसार,
पाँच उँगलियाँ बाँध
मुँह तक ला,
भीतर घुसी हुई आँखों से
आँसू ढार,

मानव होने का सारा संमान विसार
घूमती गाँव-गाँव,
घूमती नगर-नगर,
बाज़ारों-हाटों में, दर-दर, द्वार-द्वार !

अरे, यह भूख हुई साकार,
दीर्घाकार !
तृप्त कर सकता इसको कौन ?
पेट भर सकता इसका कौन ?
भूख ही होती, लो, भोजन !
मृत्यु अपना मुख शत-योजन
खोलती,
खाती और चबाती,
मोद मनाती,
मग्न हो मृत्यु नृत्य करती !
नग्न हो मृत्यु नृत्य करती !
देती परम तुष्टि की ताल,
पड़ गया बंगाले में काल,

भरी कंगालों से धरती,
भरी कंकालों से धरती!

क्या कहा ?
कहाँ पड़ गया काल,
कहाँ कंगाल,
कहाँ कंकाल,
क्या कहा, कालत्रस्त बंगाल !

वही बंगाल—
जिसपर छाए सजल घनों की
छाया में लह-लह लहराते
खेत धान के दूर-दूर तक,
जहाँ कहीं भी गति नयनों की ।

जिसपर फैले नदी-सरोवर,
नद-नाले वर,
निर्मल निर्झर

सिंचित करते वसुंधरा का
आँगन उर्वर ।

जिसमें उगते-बढ़ते तरुवर,
लदे दलों से,
फँदे फलों से,
सजे कली-कुसुमों से सुंदर ।

वही बंगाल--
देख जिसे पुलकित नेत्रों से
भरे कंठ से,
गद्गद स्वर से
कवि ने गाया राष्ट्र गान वह--
वंदे मातरम्,
सुजलाम्, सुफलाम्, मलयज शीतलाम्,
शस्य श्यामलाम्, मातरम्. . . .।

वंदे मातरम्--

जो नगपति के उच्च शिखर से
रासकुमारी के पदनख तक,
गिरि-गह्वर में,
वन प्रांतर में,
मरुस्थलों में, मैदानों में,
खेतों में औ' खलिहानों में,
गाँव-गाँव में,
नगर-नगर में,
डगर-डगर में,
बाहर-घर में
स्वतंत्रता का महामंत्र बन
कंठ-कंठ से हुआ निनादित,
कंठ-कंठ से हुआ प्रतिध्वनित ।

जपकर जिसको आज़ादी के दीवानों ने
कितने ही
दी मिला जवानी
मिट्टी में काले पानी में ।

कितनों ने हथकड़ी-बेड़ियों की झन-झन पर
जिसको गाया,
और सुनाया,
मन बहलाया,
जबकि डाल वे दिए गए थे
देश प्रेम का मूल्य चुकाने
कठिन, कठोर, घोर कारागारों में ।

कितने ही जिसको जिह्वा पर लाकर
बिना हिचक के,
बिना झिझक के,
हँसते-हँसते
झूल गए फाँसीवाले तख़्ते पर,
या खोल छातियाँ खड़े हुए
गोली की बौछारों में ।

वही बंगाल--
जिसकी एक साँस ने भर दी

मरे देश में जान,
आत्म संमान,
आज़ादी की आन,
आज,
काल की गति भी कैसी, हाय,
स्वयं असहाय,
स्वयं निरुपाय,
स्वयं निष्प्राण,
मृत्यु के मुख का होकर ग्रास,
गिन रहा है जीवन की साँस-साँस।

हे कवि, तेरे अमर गान की
सुजला, सुफला,
मलय गंधिता,
शस्य श्यामला,
फुल्ल कुसुमिता,
द्रुम सुसज्जिता,
चिर सुहासिनी,

मधुर भाषिणी,
धरणी भरणी,
जगत वंदिता
बंग भूमि अब नहीं रही वह !

बंग भूमि अब
शस्य हीन है,
दीन क्षीण है,
चिर मलीन है,
भरणी आज हो गई हरणी;
जल दे, फल दे और अन्न दे
जो करती थी जीवन दान,
मरघट-सा अब रूप बनाकर,
अजगर-सा अब मुँह फैलाकर
खा लेती अपनी संतान !
बच्चे और बच्चियाँ खाती,
लड़के और लड़कियाँ खाती,
खाती युवक, युवतियाँ खाती,

खाती बूढ़े और जवान,
निर्ममता से एक समान;
वंग भूमि बन गई राक्षसी--
कहते ही लो कटी ज़बान !...

राम-रमा !
क्षमा-क्षमा !
माता को राक्षसी कह गया !
पाप शांत हो,
दूर भ्रांति हो।
ठीक, अन्नपूर्णा के आँचल
में है सर्वस,
अन्न तथा रस,
पड़ा न सूखा,
बाढ़ न आई
और नहीं आया टिड्डी दल,
किंतु बंग है भूखा, भूखा, भूखा !
माता के आँचल की निधियाँ

अरे लूटकर कौन ले गया ?

हाथ न बढ़ तू,
ठहर लेखनी,
अगर चलेगी, झूठ कहेगी।
हाथों पर हथकड़ी पड़ी है,
सच कहने की सज़ा बड़ी है,
पड़े ज़बानों पर हैं ताले,
नहीं ज़बानों पर, मुँह पर भी;
पड़े हुए प्राणों के लाले—
बरस-बरस के पोसे-पाले
भूख-भूख कर,
सूख-सूखकर,
दारुण दुख सह,
लेकिन चुप रह,
जाते हैं मर,
जाते हैं झर
जैसे पत्ते किसी वृक्ष के

पीले, ढीले
झंझा के चलने पर !
कृमि-कीटों की मृत्यु किस तरह
होती इससे बदतर !

बोल विश्व विख्यात मेदिनी,
बोल विश्व इतिहास शोभिनी,
बोल बंग की पुण्य मेदिनी,
बोल बंग की पूत मेदिनी,
बोल विभा की चिर प्रसूतिनी,
बोल अमृत पुत्रों की जननी--

जननी श्री गोविंद गीत के
तन्मय गायक,
रसिक विनायक,
कवि नृप श्री जयदेव भक्त की;
बँगला वाणी
जीवन दानी,

कवि-कुल-कोकिल चंडिदास की;
औ' पद्मापति पद अनुरागी,
गृह परित्यागी,
परम विरागी
श्री चैतन्य देव की जिनकी
भक्ति-ज्वाल में
विगलित होकर
हृदय बंग का कभी ढला था !

बोल अमर पुत्रों की जननी--
जननी श्री विद्यासागर की,
राष्ट्र गीत विरची बंकिम की,
मेघनाद-वध महाकाव्य के
प्रखर प्रणेता मधुसूदन की,
मानवता के वर विज्ञानी
शरच्चंद्र की,
विश्ववंद्य कवि श्री रवींद्र की,
पिकी हिंद की सरोजिनी की,

तोरुदत्त औ' श्री द्विजेंद्र की
और अग्निवीणा के वादक
कवि क़ाज़ी नज़रुलिस्लाम की ।

बोल अजर पुत्रों की जननी--
जननी, भावी के वर द्रष्टा
राजा'मोहन राय सुधी की,
रामकृष्ण से परम यती की,
योगीश्वर अरविंद ज्ञानरत
और विवेकानंद व्रती की;
देश प्रेम के प्रथमोन्मेषक
'लाल' 'बाल' के बंधु 'पाल' औ'
विद्यावाचस्पति सुरेंद्र की,
जिसका नाम वीर अर्जुन की
अमर प्रतिज्ञा
'न पलायन' की
आंग्ल प्रतिध्वनि
बनकर हृदय-हृदय में गूँजी--

सुरेंदर नाथ,
'सरेंडर नाट'[1]!
जननी ऐसे नाम धनी की
औ' उनके समकक्षी-से ही
वाग्मि घोष की,
देशबंधु श्री चितरंजन की,
आशुतोष की,
श्री सुबोस की!

बोल अभय पुत्रों की जननी--
परदेशी के प्रथम विरोधी,
परदेशी को प्रथम चुनौती
देनेवाले,
उससे लोहा लेनेवाले
'क़ासिम और सिराज वीर की,
और क्रांति के अग्रदूत

---

[1] —Surreder Not—हार न मानो—'न पलायन'।

उस क्षुधीराम की,
जिसने अपनी वय किशोर में
ही यह सिद्ध किया था अब भी
बुझी राख में आग छिपी है;
उसी आग की चिनगारी-से,

परम साहसी,
बंब प्रहारी
रास बिहारी की, जो अब भी
ऐसा सुनने में आता है,
अन्य देश में
छद्म वेष में घूम-घूमकर
अलख जगाता है हुब्बुल वतनी का ।
और शहीद यतींद्र धीर की,
जिसने बंदीघर के अंदर
पल-पल गल-गल,
पल-पल घुल-घुल,
तिल-तिल मिट-मिट,
एकसठ दिन तक

अनशन व्रत रख,
प्राण त्यागकर
यह बतलाया था हो बंदी देह
मगर आत्मा स्वतंत्र है !

बोल अमर पुत्रों की जननी,
बोल अजर पुत्रों की जननी,
बोल अभय पुत्रों की जननी,
बोल बंग की वीर मेदिनी,
अब वह तेरा मान कहाँ है,
अब वह तेरी शान कहाँ है,
जीने का अरमान कहाँ है,
मरने का अभिमान कहाँ है !

बोल बंग की वीर मेदिनी,
अब वह तेरा क्रोध कहाँ है,
तेरा विगत विरोध कहाँ है,
अनयों का अवरोध कहाँ है,

भूलों का परिशोध कहाँ है !

बोल बंग की वीर मेदिनी,
अब वह तेरी आग कहाँ है,
आज़ादी का राग कहाँ है,
लगन कहाँ है, लाग कहाँ है!

बोल बंग की वीर मेदिनी,
अब तेरे सिरताज कहाँ हैं,
अब तेरे जाँबाज़ कहाँ हैं,
अब तेरी आवाज़ कहाँ है !

बंकिम ने गर्वोन्नत ग्रीवा
उठा विश्व से
था यह पूछा,
'के बोले मा, तुमि अबले ?'

मैं कहता हूँ,

तू अबला है ।
तू होती, मा,
अगर न निर्बल,
अगर न दुर्बल,
तो तेरे यह लक्ष-लक्ष सुत
वंचित रहकर उसी अन्न से,
उसी धान्य से
जिसपर है अधिकार इन्हीं का,
क्योंकि इन्होंने अपने श्रम से
जोता, बोया,
इसे उगाया,
सींच स्वेद से
इसे बढ़ाया,
काटा, माड़ा, ढोया,
भूख-भूख कर,
सूख-सूखकर,
पंजर-पंजर,
गिर धरती पर

यों न तोड़ देते अपना दम
और नपुंसक मृत्यु न मरते ।

क्षीणकाय कुत्ते के आगे
से भी अगर हटा ले कोई
उसकी सूखी हड्डी-रोटी,
शेर की तरह गुर्राता है;
कान फटककर,
देह झटककर,
विद्युत गति से
अपना थूथन ऊपर करके,
लंबे, तीखे
दाँत निकाले
रोटी लेनेवाले की छाती के ऊपर
चढ़ जाता है,
बढ़ जाता है
ले लेने को अपना हिस्सा;
कोता क़िस्सा--

पशु को भी आता है अपने
अधिकारों पर लड़ना-मरना,
जो कि आज तुम भूल गए हो,
भूखे बंग देश के वासी !

छाई है मुरदनी मुखों पर,
आँखों में है धँसी उदासी;
विपद् ग्रस्त हो,
क्षुधा त्रस्त हो,
चारों ओर भटकते फिरते,
लस्त-पस्त हो
ऊपर को तुम हाथ उठाते,
और मनाते
'बरसो राम पटापट रोटी !'
क्योंकि सिखाया,
क्योंकि पढ़ाया,
क्योंकि रटाया,
तुम्हें गया है—

'निर्बल के बल राम !'
(हाय किसी ने क्यों न सुझाया
निर्बल के बल राम नहीं हैं,
निर्बल के बल हैं दो घूँसे !)

जब न राम टस से मस होते,
नहीं बरसते तुम पर रोटी,
सुरुआ-बोटी,
तुम हो अपना भाग्य कोसते,
मन मसोसते,
यही बदा था,
यही लिखा था,
'होइहि सोइ जो राम रचि राखा,
को करि तरक बढ़ावइ साखा—'
अंतिम साँसों से रट-रटकर
तुम जाते मर,
लेकिन जीवित भी रहने पर
कब तुम थे मुरदों से बेहतर !

पच्छिम की है एक कहावत,
इसको सीखो,
इसको घोखो,
'गॉड हेल्प्स दोज़
हू हेल्प देमसेल्व्ज़'—
'राम सहायक उनके होते
जो अपने हैं स्वयं सहायक'।
पूर्व जन्म के
धर्म-कर्म में,
भाग्य-मर्म में
इस जीवन का अर्थ न खोजो।
यही कायरों के शरणस्थल,
यहीं छिपा करते हैं निर्बल,
यहीं आड़ लेते हैं असफल।

मुझसे सुन लो,
नहीं स्वर्ग से अन्न गिरेगा,
नहीं गिरेगी नभ से रोटी;

किंतु समझ लो,
इस दुनिया की प्रति रोटी में,
इस दुनिया के हर दाने में
एक तुम्हारा भाग लगा है,
एक तुम्हारा निश्चित हिस्सा;
उसे बँटाने,
उसको लेने,
उसे छीनने,
औ' अपनाने
को जो कुछ भी तुम करते हो,
सब कुछ जायज़,
सब कुछ रायज।

अपना सारा हिस्सा खोकर
तुम बैठे हो निश्चल होकर,
कैसे कायर !
उठो भाग अब अपना माँगो,
बंग देश के भूखो जागो !

घोषित कर दो दिक्-दिगंत में
भूख नहीं है भीख चाहती,
भूख नहीं है भीख माँगती,
भीख माँगते केवल कादर,
केवल काहिल,
केवल बुज़दिल;
भूख बली है,
भूख चली है
अब अपने प्रति न्याय माँगने,
अब अपना अधिकार माँगने,
और न दो तो रार माँगने ।

कम पर मत संतोष करो तुम,
होश करो तुम,
कर संतोष कहाँ तुम पहुँचे,
हटते-हटते,
कटते-कटते,
घटते-घटते,

वहाँ जहाँ संतोष मरण है ।

संतों ने संतोष सिखाया ?
इसी नतीजे पर पहुँचाया
है तुमको तो
मैं कहता हूँ
संत तुम्हारे महा लंठ थे;
पर चालाक तुम्हारे शासक,
पर चालाक तुम्हारे शोषक,
जो दे लंबे-चौड़े चंदे,
करा कीर्तन,
कहा हरिभजन,
इन संतों की सरस बानियाँ
हैं तुम पर सरसाते रहते,
हैं तुम पर बरसाते रहते,
शांत रहो तुम,
भ्रांत रहो तुम,
और तुम्हारी आग न जागे,

असंतोष का राग न जागे,
और तुम्हारे मुँह के अंदर
अटका रहे राम का रोड़ा,
जिससे मुख से शब्द क्रांति का निकल न पाए !

नए जगत में आँखें खोलो,
नए जगत की चालें देखो,
नहीं बुद्धि से कुछ समझा तो
ठोकर खाकर तो कुछ सीखो,
और भुलाओ पाठ पुराने ।

मन से अब संतोष हटाओ,
असंतोष का नाद उठाओ,
करो क्रांति का नारा ऊँचा,
भूखो, अपनी भूख बढ़ाओ,
और भूख की ताक़त समझो,
हिम्मत समझो,
जुर्रत समझो,

क़ूवत समझो;
देखो कौन तुम्हारे आगे
नहीं झुका देता सिर अपना ।

याद मुझे हो आई सहसा
एक पते की बात पुरानी,
हुए दस बरस,
जापानी कवि योन न ़ची
भारत में था,
देख देश की अकर्मण्यता
उसने यह आदेश किया था--
'यू हैव टु गिव योर पीपुल
दि सेंस ऑफ़ हंगर'--
'अपने देश वासियों को है तुम्हें बताना
अर्थ भूख का ।'

जबकि पढ़ा था
खूब हँसा था,

जहाँ करोड़ों दिन भर मर-खप ?
आधा पेट नहीं भर पाते,
एक बार भी जो जीवन में
नहीं अघाते,
और जहाँ का नेता-नेता
नहीं भूलता है दुहराना
देता भाषण,
स्टारविंग मिलियन--
भूखे अनगिन,
वहाँ सुनाना,
'अपने देशवासियों को है तुम्हें बताना
अर्थ भूख का,'
कितना उपहासास्पद, सच है,
कवि ही ठहरे,
जल्प दिया जो जी में आया ।

बीत गए दस बरस देश के,
पड़ा काल बंगाल भूमि पर

और पढ़ा पत्रों में मैंने,
कैसे भूखों के दल के दल
गहना-गुरिया, बर्तन-भाँड़ा,
गैया-गोरू, बैल-बछेरू,
बोरी-बँधना, कपड़ा-लत्ता,
ज़र-ज़मीन सब बेच-बाचकर,
पुश्तैनी घर-बार छोड़कर
चले आ रहे हैं कलकत्ता।

कैसे भूखों के दल के दल
दर-दर मारे-मारे फिरते,
दाने-दाने को विललाते,
ग्रास-ग्रास के लिए तरसते,
कौर-कौर के लिए तड़पते
मौत मर रहे हैं कुत्तों की;
अरे नहीं,
कुत्ता भी मरता नहीं इस तरह;
मौत मर रहे हैं कीड़ों की,

या इनसे भी निम्न कोटि की ।
(उफ़, मनुष्य के महापतन की
बनी न सीमा !)

और सुना जब मैंने यह भी,
भूखे देखे गए छीनकर
बच्चों से निज रोटी खाते,
या कि बेचते उनको हाटों
में कुछ ताँबे के टुकड़ों पर,
जिससे दो दिन और जिएँ वे
पशु का जीवन,
और फिरें फिर
घूरों पर,
कूड़ाख़ानों पर,
और अधिक गंदी जगहों पर
उठा दाँत से लेने को यदि
कोई दाना वहाँ पड़ा हो--
मानवता को निंदित करते,

लज्जित करते,
मानव को मानव संज्ञा से
वंचित करते . . . .

तब मैंने यह कहा कि हमने
अर्थ भूख का अभी न जाना,
हमें भूख का अर्थ बताना,
भूखो, इसको आज समझ लो,
मरने का यह नहीं बहाना !

फिर से जीवित,
फिर से जाग्रत,
फिर से उन्नत
होने का है भूख निमंत्रण,
है आवाहन ।

भूख नहीं दुर्बल, निर्बल है,
भूख सबल है,

भूख प्रबल है,
भूख अटल है,
भूख कालिका है, काली है,
या काली सर्व भूतेषु
क्षुधा रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै, नमोनमः !

भूख प्रचंड शक्ति शाली है,
या चंडी सर्व भूतेषु
क्षुधा रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै, नमोनमः !

भूख अखंड शौर्य शाली है,
या देवी सर्व भूतेषु
क्षुधा रूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमोनमः !

भूख भवानी भयावनी है,
अगणित पद, मुख, कर वाली है,
बड़े विशाल उदरवाली है।
भूख धरा पर जब चलती है,
वह डगमग-डगमग हिलती है।
वह अन्याय चबा जाती है,
अन्यायी को खा जाती है,
और निगल जाती है पल में
आततायियों का दुःशासन,
हड़प चुकी अब तक कितने ही
अत्याचारी सम्राटों के
छत्र, किरीट, दंड, सिंहासन !

नहीं यक़ीन तुम्हें आता है ?
नहीं सुनाई तुम्हें किसीने
कभी फ़्रांस की क्रांति अभी तक ?
भूखों ने की क्रांति वहाँ थी।

तुम भूखे हो मरनेवाले,
हाथ हाथ पर धरनेवाले,
वे भूखे थे जीनेवाले,
हाथ उठा कुछ करनेवाले
साहस वाले, सीनेवाले ।

बीते बरस एक सौ चौवन,
यह विप्लव विस्फोटक फूटा
फ़्रांस देश में,
जो अनियंत्रित राज शक्ति का
अटल केंद्र था,
अडिग दुर्ग था ।

राजा निज वैभव विलास की
सामग्री संचित करने में,
रम्य महल औ' भव्य भवन के
निर्मित औ' सज्जित करने में,
और महत्वाकांक्षा प्रेरित

समर योजनाओं के ऊपर
बहा रहा था धन ऐसे जैसे हो पानी !

और फ़्रांस की प्रजा बिचारी,
प्रजा दुखारी,
दुर्दिन मारी,
यह कर भारी
अदा कर रही थी अपने जीवन के रक्त कणों से !

सहने की सीमा आ पहुँची;
बहुत प्रजा ने राजा को समझाना चाहा,
अपना कष्ट बताना चाहा,
पर अभिमानी
करता चला गया मनमानी !

पुरुष निवासी थे पेरिस के,
नहीं वहाँ रहते थे हिंजड़े,
नहीं वहाँ बसते थे ज़नखे

जो सारे अत्याचारों को
या अमानुषिक व्यवहारों को
शीश झुकाकर सह लेते हैं ।

क्रोधानल से,
महा प्रबल से
धधक उठी छाती पेरिस की;
एक लपट में राख हो गया
बास्तील का क़िला पुराना,
जो प्रतीक बन खड़ा हुआ था
राजा की सत्ता-प्रभुता का ।

और दगी यह आग देश के
हर कोने में,
हर गोशे में,
उथल-पुथल मच गई फ़्रांस में,
घोर अराजकता ने अपना पाँव पसारा,
बिखरा शीराज़ा समाज का,

अन्न हो गया ग़ायब सहसा
पेरिस की हाटों-बाटों से,
लगे तड़पने लोग भूख से !

सुनो हाल अब ज़रा उधर का ।
राजा-रानी
तज रजधानी,
ले रक्षक, सेना, सेनानी,
चले गए थे वरसाई को
ग्यारह मील दूर पेरिस से ।

एक मनोहर वनस्थली में
वरसाई गर्विता बसी थी,
ऋद्धि-सिद्धि, संपत्ति, विभव से,
वैभव से सब भाँति लसी थी ।
गुंबद, कलश, धरहरे वाले
नभ-चुंबी प्रासाद खड़े थे,
जिनके चारों ओर सुशोभित

हरे, घने उद्यान बड़े थे ।
झलक रहा था जहाँ-तहाँ पर
झीलों का नीलम-सा पानी,
करते थे संगीत मनोरम
जिधर-तिधर झरने सैलानी ।
शीतल, मंद, सुगंधित सारी
चिंताओं को हरनेवाला
पवन सदा उसपर बहता था,
मानो वह कहता रहता था--
नहीं यहाँ कोई आएगा
भंग शांति को करनेवाला ।
(कितना था अज्ञान यहाँ पर
कल होनेवाले ऊधम से !)

जब पेरिस भूखों मरता था
वृद्ध पिता-माता फैलाए
हाथ पुत्र से यह कहते थे,
'बेटा भूख लगी है, रोटी !'

तब वरसाई के शातू[1] में
झाड़ और फ़ानूस सुसज्जित
सबसे बड़े हॉल के अंदर
भोज दे रहे थे नृप-दंपति,
होने को शरीक जिसमें थे
सब अमीर-उमरा आमंत्रित ।

जब पेरिस भूखों मरता था,
पत्नी अपने पति के आगे
प्रेम और यौवन का सारा
स्वप्न तथा रोमांस भूलकर
हाथ पसारे यह कहती थी,
'प्यारे भूख लगी है, रोटी',
तब वरसाई के शातू में
हँसी-दिल्लगी और मनोरंजक
गप्पों के फ़ौवारों में,

---

[1] फ्रांसीसी शब्द है, अर्थ है महल ।

ह्विस्की, ब्रैंडी, शैम्पेन की
बोतल की बोतल के मुह से
काग उड़ रहे थे पल-पल पर ।

जब पेरिस भूखों मरता था,
बच्चे माओं के आँचल को
थाम दृगों में आँसू भर-भर,
मचल-मचल, रोते-चिल्लाते
थे कहते, 'मा भूख लगी है,
रोटी लाओ, रोटी लाओ !'
तब वरसाई के शातू में
रंग-बिरंगी वर्दी पहने
चतुर बजनिए झूम-झूमकर
बैंड गहागह बजा रहे थे,
और बिगुल की धुतू-धकर के
झंडों की हर-हर, फर-फर के
बीच अंतनत[1] गर्वित-ग्रीवा

[1] Marie Antoinette—फ्रांस के राजा लुई सोलहवें की पत्नी

(हुई नाम से निश्चित क़िस्मत)
राज कुँवर को लिए गोद में,
भरी मोद में,
किए लुई को पीछे-पीछे,
घूम रही थी मेहमानों में,
जैसे हो चंदा तारों की भरी सभा में ।

जिधर दृष्टि जाती थी उसकी,
खड़ी क़तारें सामंतों की
खड्ग हवा में लहराती थीं,
झहराती थीं,
झनकाती थीं,
चमकाती थीं,
और उठा मदिरा के प्याले,
राज स्वास्थ्य के लिए उन्हें पी,
राजभक्ति की सौगंधें खाती थीं ।

जब पेरिस भूखों मरता था

बच्चों से लेकर बूढ़े तक
क्षीण हो रहे थे दिन-प्रतिदिन,
तब मेज़ों की जूठन खाकर,
ख़ूब अघाकर
मोटा रहे थे वरसाई के कुत्ते-कुत्ते।

एक सबेरे
बेटे ने भूखी मा देखी !
पति ने भूखी पत्नी देखी !
मा ने देखे भूखे बच्चे !
और एक निश्चय से सारा
पेरिस पल में एक हो गया !

सड़क-सड़क से, हाट-हाट से,
गली-गली से, बाट-बाट से,
घर-घर से औ' घाट-घाट से,
दर-दर से औ' दूकानों से,
दफ़्तर से औ' दीवानों से,

होटल से, काफ़ीख़ानों से,
दूर-दूर से, पास-पास से
एक उठी आवाज़ और वह
गूँज गई संपूर्ण नगर में—

एलों[1]-एलों, एलों-एलों !
चलो चलें, चलें चलो !
घर छोड़ो, बाहर निकलो !
एलों-एलों !
चलो-चलो !
एलों-एलों !
मिलो-मिलो !
एलों-एलों !
सब मिलकरके साथ चलो !
एलों-एलों !
साथ चलो औ' साथ बढ़ो !

---

[1]—Allons फ़्रांसीसी शब्द है, अर्थ है 'आओ चलें' ।

एलों-एलों, एलों-एलों !
साथ बढ़ो औ' साथ रहो,
जो कुछ कहना साथ कहो,
जो कुछ करना साथ करो,
जो कुछ बीते साथ सहो,
साथ जिओ सब, साथ मरो !
एलों-एलों, एलों-एलों !

जो जिसके हथियार लग गया
हाथ वही वह लेकर निकला,
कोई ले बंदूक़ पुरानी,
कोई ले तलवार दुधारी,
कोई बल्लम, कोई फरसा,
कोई बरछी, कोई बरछा,
कोई भाला, कोई नेज़ा,
कोई सीधा, कोई तिरछा,
कोई छूरी और कटारी,
कोई छूरा और भुजाली,

कोई कुल्हरी और कुदाली,
कोई आरा, कोई आरी;
जिनको कुछ न मिला पेड़ों की
शाख़ लिए हाथों में निकले,
टेढ़ी-मेढ़ी, भद्दी, भारी
या पत्थर ईंटे नोकीले !

एक सबेरे
फटे-पुराने कपड़े पहने,
बाल बिखेरे,
बालक, वृद्ध, युवा, नर, नारी
कितने, इनको कौन गिने रे,
क्षीणकाय पर दृढ़ संकल्पी,
सज बेढंगे हथियारों से,
सज बेडौले औज़ारों से,
आसमान में उन्हें उठाते,
उन्हें घुमाते औ' उछालते
हुए इकट्ठा,

ठट्टिम ठट्टा,
पेरिस के उस राजमार्ग पर
जो वरसाई को जाता था !

और बढ़े फिर उसी ओर को
भरे जोश में,
भरे रोष में,
जैसे सावन की बरसाती
नदी बाढ़ पर, जल-मदमाती,
हिल्लोलित, कल्लोलित होती,
और ढहाती कूल किनारे,
और बहाती तट वृक्षों को,
बढ़ा पाट-सी चौड़ी छाती
चली जा रही हो अबाध गति
अंबुधि से मिलने को !

कौन रोकता उसका वेग,
कौन रोकता उसका नाद ?

इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
सब मनुष्य हैं एक समान,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
एक विधाता की संतान,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
सब आज़ादी के हक़दार,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
स्वतंत्रता के दावेदार,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
नहीं किसीको है अधिकार,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
करे किसी पर अत्याचार,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !—

इस निनाद से,
इस जिहाद से
थर-थर काँप उठी वरसाई,
इस प्रकार से जैसे कोई

छुईमुई की मृदु लतिका-सी,
अक्षतयोनि अबोध कुमारी
देख बलिष्ठ किसी पट्ठे को
हट्टे-कट्टे,
जिसके ताक़तवाले गट्टे,
जो कामातुर
होकर निर्भय, होकर निष्ठुर
बलात्कार करने को उसकी
ओर बढ़ा आता हो।

भूखों के दल का वरसाई
में घुसना था, ग़ज़ब हो गया !
बिगड़े साँड़ धँस पड़े मानो
शीशे-चीनी के बर्तन के बाज़ारों में।
क्या-क्या टूटा,
क्या-क्या फूटा,
और गया किस-किस को लूटा ?
सब कुछ टूटा,

सब कुछ फूटा,
और गया सारा कुछ लूटा ।

'आख़िर क्या तुम चाह रहे हो,
आख़िर क्या है माँग तुम्हारी ?'
'ब्रेड ऐंड स्पीच विद द किंग,
ब्रेड ऐंड नाट टू मच टाकिंग'[१]—
'बस दो बातें मोटी-मोटी
अपना राजा, अपनी रोटी !'

हू-हा करते,
शोर मचाते,
औ' ग़ौग़ा से गगन गुँजाते,
कटु कर्कश स्वर से चिल्लाते,
लोग चले आते हैं कहते,
हाथ उठाते,

---

[१]—अर्थ है, रोटी और राजा से साक्षात्कार; रोटी, बिना किसी बात और बहस के ।

'करेज फ़्रेंड्स !
वी शैल नाट वांट ब्रेड नाऊ,
वी आर ब्रिंगिग यू द बेकर,
द बेकरेस ऐंड बेकर्स ब्वाय'[१]—
'अब निराश मत हो, हे मित्रो,
रोटी की अब कमी न होगी,
देखो आज पकड़कर हम सब
बाबर्ची, बार्बचिन लाए,
बाबर्ची का बेटा,
हमें बना अब देंगे रोटी
और भरेंगे पेटा,
भाई खूब भरेंगे पेटा'—

विश्व विजयिनी भूख भवानी
का है यह लश्कर लासानी,

---

[१]—अर्थ है, दोस्तो डटे रहो, अब हमें रोटी की कमी न रहेगी। देखते नहीं हम तुम्हारे लिए बाबर्ची, बार्बचिन और उसका बेटा लेकर आ रहे हैं (तात्पर्य है राजा, रानी और राजकुमार से)।

जो अब पेरिस को आता है,
राज शक्ति पर फ़तहयाब हो।
राजा-रानी,
मंत्री मानी,
संरक्षक सेना, सेनानी,
औ' अमीर-उमरा अभिमानी
होकर श्रीहत,
हो नतमस्तक,
चुप्पी साधे
और बग़ल में मुट्ठी बाँधे,
घिरे हुए बलवाई दल से
चले आ रहे हैं पेरिस को
धीरे-धीरे-धीरे।

ज़्यादातर पैदलवाले हैं,
पर सवारियाँ
जो भी मिल पाई है उनपर
लोग ठसाठस बैठ गए हैं।

आज विजय के पागलपन में
उन्हें नहीं कुछ अता-पता है,
किसके नीचे, किसके ऊपर;
बाल बिखेरे, चिथड़े पहने,
लिए हाथ में लोहे के छड़,
मर्द-औरतें कूद-कूदकर
जा बैठी हैं
तोप गाड़ियों पर, तोपों पर ।

आसा-बल्लम,
फरसे-बरछे,
तेग़े-नेजे,
फाले-भाले,
औ' बंदूक़ों की संगीनें
उठी हवा में उचक रही हैं,
खोंसे हुए उनकी नोकों के
ऊपर है रोटी के टुकड़े,
मानो यह घोषित करती हैं—

हाथ दीनता से फैलाकर
नहीं भीख हम हैं ले आई,
किंतु वीरता से लड़भिड़कर
हमने अपनी रोटी पाई !

ऋषियों ने सत्य ही कहा--
वीरभोग्या वसुंधरा।

ओ बंगाल देश के भूखो !
एक नज़र तुम इनको देखो,
एक नज़र अपने को देखो;
इनके कंधे से तुम अपना कंधा नापो,
इनके सीने से तुम अपना सीना नापो,
इनके बाज़ू से तुम अपने बाज़ू नापो !

अरे कहाँ ये, अरे कहाँ तुम,
कहाँ खड़े ये, कहाँ पड़े तुम,
कहाँ खड़े ज़िंदा दिल वाले,

कहाँ पड़े बेदम के बूदम !
कहाँ हथेली पर सिर रक्खे
हक़ पर लड़नेवाले योद्धा,
कहाँ हथेली से सिर ढाँपे
पज़मुरदा माटी के धोंधा !

मिट्टी के पुतले ये भी हैं,
पर इनकी छाती के अंदर
जोश और जज़्बा के झंझा
औ' तूफ़ान किसी ने फूँके;
और तुम्हारे अंदर चलतीं
केवल उखड़ी-उखड़ी साँसें !

काश कि मुझमें ताक़त होती,
मैं अपनी प्राणप्रद वाणी
पास तुम्हारे पहुँचा करके
जीवन, जागृति औ' उन्नति का
नव संदेश तुम्हें दे सकता !

एक नबी की आवश्यकता
आशा वाले,
जादू वाली भाषा वाले,
जो आए औ' तुम्हें बताए,
दृढ़ता से दिल में बैठाए--
तुम मनुष्य हो
औ' मनुष्य की तुममें संत्ता,
जो मनुष्य ने किया,
मनुष्य उसे कर सकता।

यदि इसपर विश्वास जमाओ,
तो हे बंग देश के वासी,
बदल जायगा भाग्य तुम्हारा,
काल तुम्हारा,
देश तुम्हारा,
वेश तुम्हारा
और तुम्हारे नए जन्म का नया सितारा
चमकेगा ऊँचा होकरके आसमान में !

तुम अपने को पहचानो तो--
मनोवृत्तियों के परिवर्तन
में कुछ देर नहीं लगती है--
आशा नहीं हिमालय के कंदर
के अंदर छिपी हुई है,
औ' विश्वास नहीं बैठा है
हिंद महासागर की तह में;
धरो हाथ सीने पर देखो
दोनों धड़क रहे हैं दिल में,
दुनिया का कोई भी इंजन
इससे बड़ा नहीं ताक़त में ।
इसे चला दो, फिर देखोगे,
ओ बंगाल देश के वासी,
प्रबल शक्ति वाले सैनिक तुम,
धन-धरती से नाता तोड़े,
और मृत्यु के निकट पहुँचकर
पुरजन-परिजन से तृण तोड़े,
केवल सबसे बड़ा मोह प्राणों का

तुमको अब भी बाँधे;
इसे काट दो,
और बढ़ो कर
छाती आगे, पीछे काँधे,
सुनते हुए निमंत्रण तुमको
भूख भवानी जो देती है--
भूख भवानी बंग देश की
या देवी बंग देशेषु
        क्षुधा रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै,
        नमस्तस्यै, नमोनमः !
या दुर्गा बंग देशेषु
        दैन्य रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै,
        नमस्तस्यै, नमोनमः !
या काली बंग देशेषु
        काल रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमोनमः !

घड़ी मुक्ति की,
घड़ी शक्ति की,
घड़ी पुण्य की
तब आएगी,
कोटि-कोटि तुम बंग निवासी
एक साथ हो निकल पड़ोगे,
और एक स्वर से बोलोगे,
चलो-चलो हे चलो-चलो,
मिलो-मिलो हे मिलो-मिलो,
मिल-मिलकरके साथ चलो,
साथ चलो औ' साथ बढ़ो,
साथ बढ़ो औ' साथ रहो,
साथ रहो औ' साथ कहो,
साथ उठाओ एक निनाद,
साथ उठाकर अपने हाथ,
अपनी रोटी, अपना राज,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
अपनी रोटी, अपना राज—

इस नारे को अपना करके
धर्म युद्ध के लिए चल पड़ो ।
शपथ अन्न की लेकर कहता,
जो मनुष्य है भूखा रहता
वह पापी है,
जो कि भूख की ज्वाला सहता
वह पापी है,
और भूख से जो मरता है
महा पातकी;
उसकी छाया को छूने से
नरक डरेगा ।

ऋषियों की यह
दिशि-दिशि व्यापी,
युग-युग थापी,
अमर घोषणा भूल गए तुम ?—
अन्न प्राण है,
अन्न यज्ञ है,

अन्न ब्रह्म है !

नहीं अन्न से
आज ब्रह्म से वंचित हो तुम,
नहीं अन्न से
आज धर्म से वंचित हो तुम,
नहीं अन्न से
आज कर्म से वंचित हो तुम ।

उठो अन्न के लिए लड़ो तुम,
उठो धर्म के लिए लड़ो तुम,
उठो ब्रह्म के लिए लड़ो तुम,
ओ ऋषियों को अपना पूर्वज
कहनेवालो,
उठो आज अपनी सत्ता के
मूल केंद्र की रक्षा के हित
निकल पड़ो तुम,
विकल बनो तुम !

वरसाइयाँ बहुत हैं अब भी,
शायद क्रूर-कठिन पहले से,
बरसाएँगी तुम पर गोली
और तुम्हें मरना भी होगा !
लेकिन इतना निश्चित जानो
मरकर ही तुम जी पाओगे,
जीने से तुम मर जाओगे।

अपने अधिकारों पर लड़ते
अगर मरे तुम ख़ून तुम्हारा--
कवि की क़लमों से लिख देगा
अमर कथा वह बलिदानों की
जिसको पढ़कर, जिसको सुनकर
मुरदों में जीवन आएगा,
ज़िंदों में यौवन आएगा।

किंतु मरे यदि मानवता खो
--और सुना इस तरह लाखहा

कढ़िल-कढ़िलकर मौत पा चुके--
तो अपने को धन्यवाद दो,
क्योंकि चील, कौओं, स्यारों के
भोजन के तुम योग्य हो सके ।

सुनकर तुम दुर्भिक्ष निपीड़ित
हुआ द्रवित है सारा भारत,
जगह-जगह पर फंड खुले हैं,
जगह-जगह चंदा होता है,
कर मुशायरा, कवि-सम्मेलन,
नाटक, मैच, नुमाइश, नर्तन,
लोग इकट्ठा धन करते हैं,
और तुम्हें पहुँचाते रहते ।

पर विश्वास अटल है मेरा,
कुछ न बनेगा इन चंदों से,
कितने दिन इसको खाओगे ?
और जियोगे इसपर कब तक ?

यह चंदा तो थोड़ा ही है,
सिंहानियाँ पद्मपत की सब,
खेतानों की औ' बिड़ला की,
साराभाई, डालमिया की,
बालचंद की, हुकुमचंद की,
हिज़हाईनेस आग़ा ख़ाँ की,
औ निज़ाम की,
जो कि सुना जाता है सबसे
धनी व्यक्ति हैं इस दुनिया के,
और चचा इन सबके क़ारूँ
और लकड़ दादा कुबेर की
सारी दौलत भी मिल जाए,
तो हे बंग देश के भूखो,
नहीं बचा तुमको सकती है !

तुम्हें जानना है मनुष्य तुम
और नहीं कीचड़ के कीड़े
जो आहार तथा मैथुन कर

मर जाने को जीवन पाते;
तुम्हें आत्म-संमान चाहिए !

तुम्हें जानना है मनुष्य तुम,
नहीं ग़ुलाम देवताओं के,
और न उनके दया पात्र ही,
और न उनके ऊपर निर्भर;
तुम्हें आत्म-अवलंब चाहिए !

तुम्हें जानना है मनुष्य तुम,
और मानवी अधिकारों पर
जबकि खड़े होगे तुम डटकर
कोई शक्ति नहीं ऐसी जो
तुम्हें हटा दे तिल भर पीछे;
तुम्हें आत्म-विश्वास चाहिए !

तुम्हें जानना है मनुष्य तुम
जीवन में जो कुछ भी जीने

के लायक़ है उसकी रक्षा
में यदि प्राण गँवाना हो तो
नहीं हिचकना कभी उचित है;
लेकिन भिन्न आत्म-हत्या से
तुम्हें आत्म-बलिदान चाहिए !

और ख़रीदे कभी नहीं ये
जा सकते सोने-चाँदी से।
मेरे पैसे या दो पैसे
किस मसरफ़ के तुमको होते,
इसीलिए यह अपनी वाणी
तुम्हें भेजता हूँ चंदे में,
संभव है तुमको कुछ बल दे,
और कालिका करे प्रेरणा,
निकल पड़ो तुम सहसा कहकर--
अपनी रोटी, अपना राज,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !

समाप्त